महिला विधायिका आरक्षण विधेयक कितना सार्थक हो सकता है?

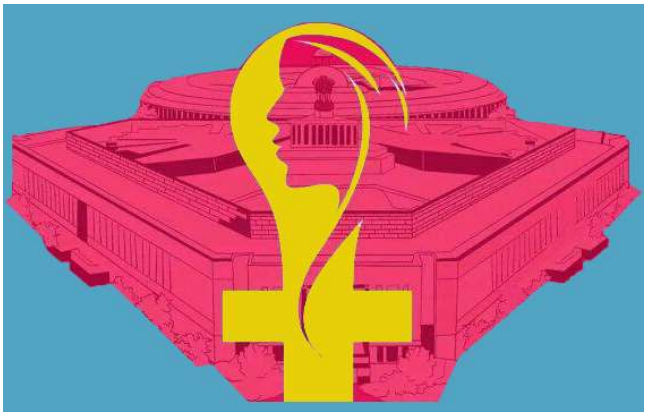

25 साल पहले प्रस्तुत किए गए महिला आरक्षण विधेयक को संसद हाल ही में पारित किया है। आखिर क्या कारण है कि इतने वर्षों में आई अलग-अलग पार्टियों की सरकारें भी लोकसभा एवं विधानसभाओं में महिलाओं को 33% आरक्षण दिए जाने पर कोई कानून नहीं ला पाईं -

- 1996 में विधेयक प्रस्तुत किए जाने के बाद संयुक्त संसदीय समिति को सौंप दिया गया था।
- 1998 की 12वीं लोकसभा में इसे पुनः प्रस्तुत किया गया। लेकिन इसे समर्थन नहीं मिला।
- 2010 में राज्यसभा ने इसे पारित कर दिया था, लेकिन सोनिया गांधी की सरकार अपने सहयोगी दलों का समर्थन नहीं जुटा पाई, और यह लोकसभा में पारित नहीं हो पाया।
- अब जब चुनावों में महिला मतदाताओं की शक्ति बढ़ती हुई नजर आ रही है, तब इसे पारित किया गया है। ज्ञातव्य हो कि 2019 में 67.01% पुरूषों की तुलना में 67.18% महिलाओं ने मतदान किया है।
- 2021 में, ममता बनर्जी की महिला केंद्रित योजनाओं को देखते हुए महिला मतदाताओं ने उन्हें बंगाल में जीत दिलाई थी। अन्य दलों को भी इस आधार पर चुनाव जीतने की उम्मीद बंध गई है। भाजपा तो वैसे ही नारी शक्ति केंद्रित अनेक कार्यक्रम चला रही है। इस आधार पर वह विरोधी दलों के नेतृत्व वाले राज्यों पर अपना प्रभुत्व बढ़ाने की योजना बना सकती है।

दूसरा प्रश्न आता है कि क्या एक-तिहाई आरक्षण से पुरूष मानसिकता को बदला जा सकता है-

- सबसे पहले, यदि कोई सीट महिला के लिए आरक्षित हो जाती है, तो पुरूष सांसदों को अपनी सीट छोड़नी होगी। इसका मतलब यह है कि उसकी जगह पार्टी की कोई महिला प्रतिनिधि या बहू-बेटी ब्रिगेड ले सकती है।

- दूसरे, महिलाओं के लिए आरक्षित सीटें प्रत्येक परिसीमन के बाद घुमाई जाएंगी। जो महिलाएं आरक्षित सीटों से लड़ेंगी, वे अपने निर्वाचन क्षेत्रों का अपेक्षित विकास नहीं कर पाएंगी, क्योंकि उन्हें पता है कि अगले चुनाव में वह उन्हें नहीं मिलना है।

निश्चित रूप से अधिक महिलाओं को राजनीति में प्रवेश करने की जरूरत है, लेकिन नेतृत्व गुणों और राजनीतिक कौशल के आधार पर समान मुख्यधारा के खिलाड़ियों के रूप में सामने आना चाहिए। आरक्षित सीटों से महिला नेता और भी पीछे जा सकती हैं। इसके साथ ही यह स्पष्ट नहीं है कि नया कानून कब लागू होगा।

'द टाइम्स ऑफ इंडिया' में प्रकाशित सागरिका घोष के लेख पर आधारित। 21 सितंबर, 2023